रचनात्मक कार्यशालाओं के माध्यम से नागरिकता

उमाशंकर पेरिओडी

सुरपुर ज़िले में तीन दिवसीय रचनात्मकता कार्यशाला की योजना बनाई गई, जहाँ बच्चे मौज़-मस्ती के साथ-साथ कुछ सीखें और रचनात्मक कार्य करें। इसका आयोजन करना हमारे लिए काफ़ी बड़ी चुनौती थी। हमने योजना बनाई कि हम कार्यशाला में बच्चों के साथ तीन प्रमुख कार्य करेंगे। पहला, उन्हें और अधिक ज़िम्मेदार बनाना; दूसरा, समुदाय/सार्वजनिक सम्पत्ति का उपयोग संवेदनशीलता के साथ करना और तीसरा, सम्प्रेषण और समस्या-समाधान के लिए मुख्य रूप से संवाद का उपयोग करना। लेकिन ऐसा करने के पहले यह ज़रूरी था कि हम उन्हें यह महसूस कराएँ कि हम सभी *समान* हैं।

समान महसूस करना

हमने महसूस किया कि बच्चों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे ख़ुद को सबके समान महसूस करें, यह महसूस करें कि उनकी बात सुनी जाती है, उस पर ध्यान दिया जाता है और उनके बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। इसकी शुरुआत करने के लिए, हमने उन्हें फ़र्श पर गोल घेरे में बैठाना शुरू किया ताकि सभी बच्चे नज़र आएँ और इससे बच्चों को यह लगता है कि सभी समान हैं। सुगमकर्ता भी उनके साथ घेरे में बैठते हैं। कोई पीछे नहीं बैठता यानी बैकबेंचर नहीं होता। कोई अगुआ नहीं होता। सभी सामने बैठे होते हैं। जो बोलता है वह नेतृत्व करता है और सभी को बोलने का मौक़ा मिलता है।

इसके अलावा कुछ अन्य नियम भी बनाए गए : जब कोई बोल रहा हो तो बाक़ी लोगों को सुनना होगा और उन्हें तभी बोलने को मिलेगा जब वह व्यक्ति अपनी बात कह चुके। जब कोई बोल रहा हो तो दूसरों को उस व्यक्ति की ओर देखना होगा। यदि बहुत-से लोग बोलना चाहते हों तो उन्हें हाथ उठाना चाहिए और सुगमकर्ता प्रत्येक को बारी-बारी से बोलने का अवसर देंगे।

बैठने की इस प्रकार की व्यवस्था का मुख्य लाभ था *दूसरों की बात सुनना* । जब किसी को कुछ कहना होता या कोई घोषणा करनी होती तो ऐसा गोल घेरे में ही किया जाता। धीरे-धीरे, रुकावटें कम से कमतर होती गईं। जो बात बार-बार दोहराई जाती थी वह यह थी कि – *जो व्यक्ति बोल रहा है, उसे अपनी बात पूरी करने दो* । जब समूह को लगता कि किसी व्यक्ति ने अपनी बात नहीं कही है तो बाकी सदस्य उस व्यक्ति से अपने विचार रखने को कहते। इस तरह सभी को बोलने का मौक़ा मिलता और उनके मन में जो सबसे महत्त्वपूर्ण भावना आती वह यह थी कि दूसरे लोग उन्हें ध्यानपूर्वक सुन रहे थे।

ज़िम्मेदार होना

शुरुआत में तो कार्यशाला में काफ़ी अव्यवस्था देखने में आई। बच्चे चीज़ों का इस्तेमाल करते और उन्हें इधर-उधर छोड़कर चले जाते। वे अपना बैग कहीं भी फेंक देते थे। हम उन्हें डाँट नहीं सकते थे और उन्हें प्यार से समझाने का कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

फिर हमने सर्कल टाइम (गोल घेरे में बैठने के दौरान) में इस मुद्दे पर बात की। चर्चा इस बात पर की गई कि अगर वे चीज़ों को इधर-उधर फेंक देते हैं तो क्या होता है, किसी जगह को व्यवस्थित और साफ़-सुथरा क्यों रखना चाहिए, ऐसा न करने से दूसरों को किस प्रकार की असुविधा हो सकती है और हमें कैसे ज़िम्मेदार बनना चाहिए। हमें हर काम को ख़ुद महसूस करके करना चाहिए, इसलिए नहीं कि किसी और ने हमसे ऐसा करने के लिए कहा है।

बच्चे इस बात को समझ गए और उन वस्तुओं के प्रति सचेत रहने लगे जिनका उपयोग वे करते थे। वे कक्षा के बाहर अपनी चप्पलें एक लाइन में रखने लगे, पेंट ब्रशों का इस्तेमाल करने के बाद उन्हें साफ़ करके रखने लगे, ब्लैकबोर्ड साफ़ करने लगे, समय पर आने लगे और अपना काम समय पर ख़त्म करने लगे। धीरे-धीरे, एक के बाद एक, कामों के प्रति उनका नज़रिया बदलने लगा।

शुरुआत में उन्हें एक-दूसरे को लेकर काफ़ी शिकायतें थीं। लेकिन जैसे-जैसे बच्चे ज़िम्मेदार होने लगे, शिकायतें कम होती गईं। वे एक-दूसरे के साथ बेहतर व्यवहार करने लगे।

सामुदायिक संसाधनों की रक्षा करना

हमने देखा कि सामान्यतः बच्चे सार्वजनिक संसाधनों के प्रति लापरवाही दिखाते थे। वे पानी पीकर गिलास को अपनी जगह पर नहीं रखते थे, खेल सामग्री का उपयोग करके उन्हें वापस नहीं रखते थे और शौचालय भी साफ़ नहीं रखते थे। हमने इस पर लम्बी चर्चा की कि कैसे हमें सार्वजनिक सम्पत्ति की

देखभाल करनी ही चाहिए। ऐसा लगा कि बच्चों को यह बात समझ में आने लगी थी कि किसी जगह का उपयोग करने के बाद उसे दूसरों के इस्तेमाल के लिए साफ़-सुथरा रखना चाहिए। हम बार-बार यही सवाल पूछते : क्या हमने उस जगह को ऐसा छोड़ा है कि दूसरे लोग उसका इस्तेमाल कर सकें? इस काम में हमें काफ़ी मेहनत करनी पड़ी। बच्चे या तो समझते नहीं थे या उन्हें याद ही नहीं रहता था। लेकिन धीरे-धीरे वे ऐसा करने लगे। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा सुधार तब देखने में आया, जब बच्चों ने एक-दूसरे को यह बताना शुरू किया कि उन्हें क्या करना चाहिए। बच्चों ने सार्वजनिक स्थानों और सामुदायिक सुविधाओं की देखभाल करना सीखा।

बातचीत से मसले सुलझाना

बच्चों के बीच लड़ाई-झगड़ा एक आम बात थी। वे छोटी-छोटी बातों पर झगड़ते थे। कभी-कभी छोटी-छोटी बातों पर बड़े-बड़े झगड़े हो जाते थे। कभी-कभी तो बच्चे शिक्षकों से भी झगड़ते थे। हम इस बारे में कुछ करना चाहते थे क्योंकि जब हम उनसे न लड़ने का अनुरोध करते तो वे मान तो जाते थे लेकिन उसके तुरन्त बाद अगर उकसाने वाली कोई बात हो जाती तो वे फिर लड़ पड़ते थे।

फिर हमने गोल घेरे में हर मसले के बारे में बात करने की प्रक्रिया शुरू की। बच्चे ये बातें सुनते और गोल घेरे में लिए गए फ़ैसले का सख़्ती से पालन किया जाता। सबकी राय सुनी जाती और फिर सबकी सहमति से फ़ैसला लिया जाता। इसका पालन सभी को करना होता था। गोल घेरे में जो भी समस्या, झगड़ा या मुद्दा लाया जाता; उस पर चर्चा करके समाधान ढूँढ़ा जाता। वहाँ ज़ोर *संवाद* पर दिया जाता था।

इसका पालन करना बच्चों के लिए सबसे कठिन काम था। जब कोई विवाद होता तो वे तुरन्त लड़-झगड़कर उसका समाधान कर लेते। लेकिन जब हमने लगातार संवाद पर ज़ोर दिया तो बच्चों ने झगड़ने की बजाय अनिच्छा से एक-दूसरे के साथ बात करना शुरू किया। लेकिन कुछ समय बाद धीरे-धीरे बच्चे संवाद का प्रयोग समस्या-समाधान की एक विधि के रूप में करने लगे। बाद में ऐसा हुआ कि जब भी दो बच्चे बात करना भूलकर आपस में झगड़ने लगते तो दूसरे बच्चे बीच-बचाव करके उन्हें अपनी समस्या का हल बातचीत के माध्यम से करने के लिए राज़ी करते। हम पूरी तरह से तो नहीं लेकिन कुछ हद तक बच्चों को बातचीत के लिए राज़ी करने में सफल रहे।

हमने इन रचनात्मकता कार्यशालाओं को कई वर्षों तक चलाया। हम यह तो नहीं कह सकते कि हम सभी स्कूलों में पूरी तरह से सफल रहे। जिन स्कूलों में हमने थोड़े समय के लिए रचनात्मकता कार्यशालाएँ कीं, वहाँ यह तरीक़ा काम नहीं आया, लेकिन जिन स्कूलों में हम वापस गए और लगातार ऐसे सत्र आयोजित किए, वहाँ यह प्रक्रिया सफल रही, हालाँकि वहाँ भी पूरी तरह से ऐसा नहीं हुआ।

परिणाम

जिन स्कूलों में ये प्रक्रियाएँ कारगर रहीं, वहाँ हमने देखा कि बच्चों ने कुछ मानदण्डों का पालन किया जो उन्हें *ज़िम्मेदार नागरिक* बनाते हैं। सबके समान महसूस करना इनमें सबसे सरल था और एक बार क़ायल होने के बाद बच्चे इसका बहुत अच्छी तरह से पालन करते थे। गोल घेरे की अवधारणा कारगर रही क्योंकि बच्चों को इस तरह बैठना पसन्द था और गोले में बैठने वाले सभी बच्चों ने बोलना शुरू कर दिया। इस प्रक्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी दूसरों की राय सुनना। हमें लगता है कि बच्चों में इस आदत का विकास करने में हमें सबसे ज़्यादा सफलता मिली।

ज़िम्मेदार होना और सामुदायिक संसाधनों की रक्षा करना कुछ ऐसी बातें थीं जिन्हें बच्चे धीरे-धीरे ही समझ पाए और इनका पालन करने में कुछ हद तक सक्षम हुए। यहाँ मुख्य प्रेरक शक्ति अन्य बच्चे थे जो किसी के भूल जाने पर उन्हें आगाह कर देते थे। जिन्हें याद दिलाया जाता था, वे बिना किसी नाराज़गी के वह काम कर दिया करते थे। कार्यशालाओं में जो बात सबसे कठिन लगी वह थी बच्चों को संवाद की प्रक्रिया में शामिल करना। बच्चे इस प्रक्रिया का महत्त्व समझ ही नहीं पाए। हमने भी इस प्रक्रिया को लेकर काफ़ी संघर्ष किया। इस प्रकार हमारी कोशिश का सबसे कम प्रभावी पक्ष संवाद का रहा। हमें अभी इस पर पकड़ बनानी है।

रचनात्मकता कार्यशालाओं और नागरिकता शिक्षा का यह अनुभव हमारे लिए सीखने का एक बड़ा स्रोत था। नागरिकता की शिक्षा कम समय में नहीं दी जा सकती। इसे समय के साथ लगातार और बार-बार करना पड़ता है। अलग-अलग समूहों में अलग-अलग विचार/अवधारणाएँ कारगर होती हैं। कौन-सा तरीक़ा सफल होगा, कौन-सा नहीं, इसका कोई पैटर्न नहीं है। सुगमकर्ता प्रेरणा के मुख्य स्रोत होते हैं। यदि सुगमकर्ता किसी ऐसी चीज़ का पालन नहीं करते जिसकी वे वकालत कर रहे हैं तो वह काम नहीं करेगी। इसलिए, लगातार और अधिक समय तक बच्चों के साथ रहना, लोकतांत्रिक जीवन की इन धारणाओं का पालन करना, बच्चों को इनकी याद दिलाते रहना और अपने व्यवहार में इन्हें दिखाना – यही वह तरीक़ा है जिससे बच्चे भी इन बातों को आत्मसात करेंगे।



उमाशंकर पेरिओडी अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में कर्नाटक राज्य के प्रमुख के रूप में कार्यरत हैं। उन्हें विकास के क्षेत्र में तीस वर्षों से अधिक का अनुभव है। उन्होंने राष्ट्रीय साक्षरता अभियान के साथ-साथ बीआर हिल्स, कर्नाटक में जनजातीय शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक योगदान दिया है। वे ज़मीनी स्तर के कार्यकर्ताओं और प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों को प्रशिक्षण देते रहे हैं, जिसे वे 'नंगे पाँव शोध' की संज्ञा देते हैं। वे कर्नाटक राज्य प्रशिक्षक संस्था के संस्थापक सदस्य भी हैं। उनसे periodi@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल